जनचेतना का प्रगतिशील कथा-मासिक

ISSN 2454-4450

मूल्य ₹ 75

हंस

जून 2025

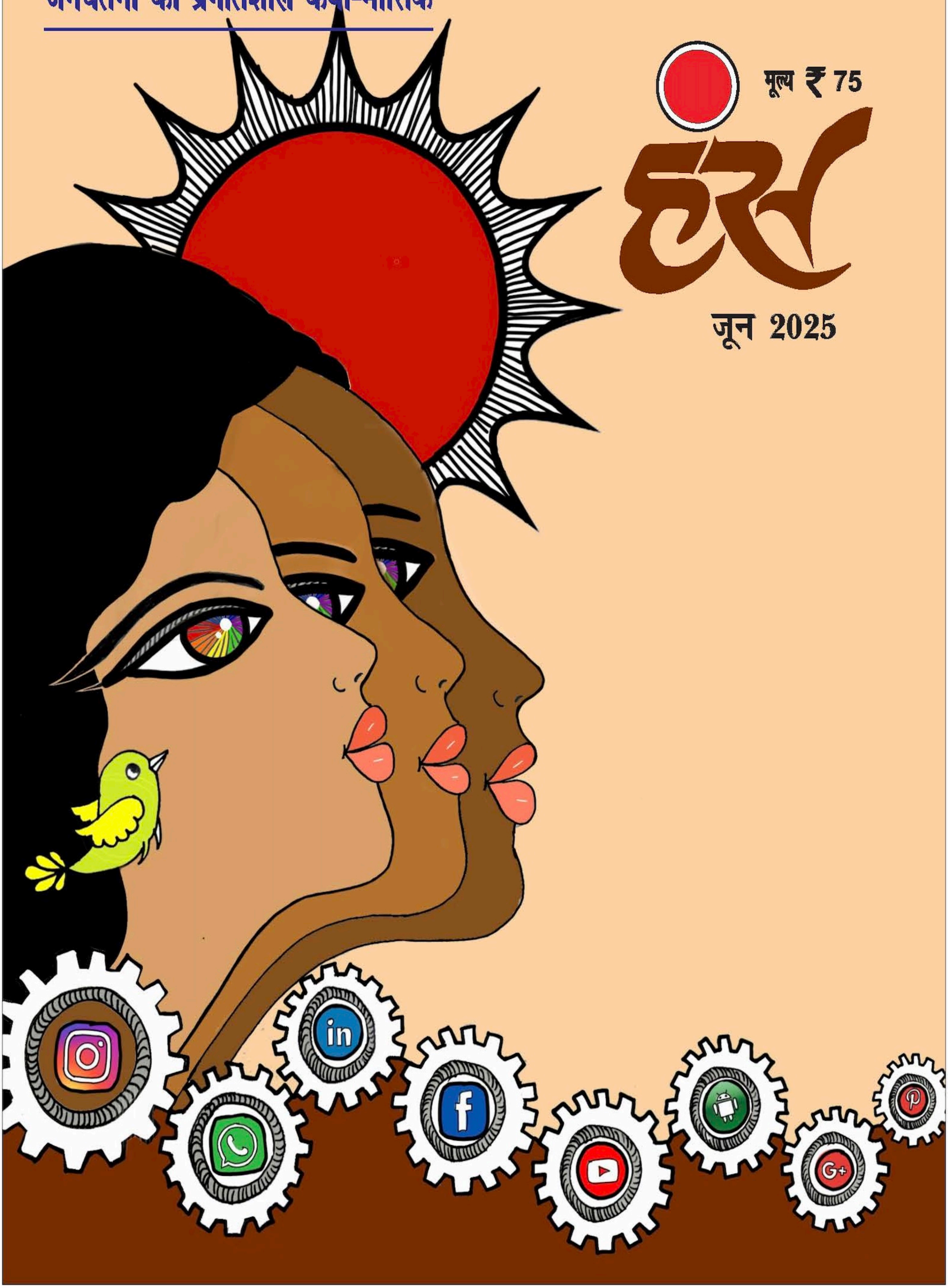

संपादक
संजय सहाय
•
प्रबंध निदेशक
रचना यादव
•
व्यवस्थापक/सह-संपादन सहयोग
वीना उनियाल
•
संपादन सहयोग
शोभा अक्षर
माने मकर्तच्यान(अवैतनिक)
•
प्रसार एवं लेखा प्रबंधक
हारिस महमूद
•
शब्द-संयोजन एवं रूपांकन
प्रेमचंद गौतम
•
ग्राफिक्स
साद अहमद
•
कार्यालय सहायक
किशन कुमार, दुर्गा प्रसाद
•
मुख्य प्रतिनिधि (उ.प्र.)
राजेन्द्र प्रसाद जायसवाल
•
रेखाचित्र
शैलेंद्र सरस्वती, कृष्ण कुमार अजनबी, सिद्धेश्वर, अनुभूति गुप्ता, आस्था

कार्यालय
अक्षर प्रकाशन प्रा. लि.
4229/1, अंसारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली-2
व्हाट्सऐप : 9717239112, 9560685114
दूरभाष : 011-41050047
ईमेल : editorhans@gmail.com
वेबसाइट : www.hanshindimagazine.in

मूल्य : 75 रुपए प्रति
वार्षिक रजिस्टर्ड : 1250 रुपए (व्यक्तिगत)
संस्था/पुस्तकालय : 1500 रुपए (संस्थागत)

वार्षिक पीडीएफ : 600 रुपए (व्यक्तिगत)
पीडीएफ : 700 रुपए (संस्थागत)
विदेशों में : 80 डॉलर
सारे भुगतान मनीऑर्डर/चैक/बैंक ड्राफ्ट द्वारा अक्षर प्रकाशन प्रा. लि. (Akshar Prakashan Pvt. Ltd.) के नाम से किए जाएं.

हंस/अक्षर प्रकाशन प्रा.लि. से संबंधित सभी विवादास्पद मामले केवल दिल्ली न्यायालय के अधीन होंगे. अंक में प्रकाशित सामग्री के पुनर्प्रकाशन के लिए लिखित अनुमति अनिवार्य है. हंस में प्रकाशित रचनाओं में विचार लेखकों के अपने हैं. उनसे हंस की सहमति अनिवार्य नहीं है. साथ ही उनके मौलिक या अप्रकाशित होने का उत्तरदायित्व संपादक और प्रकाशक का नहीं है बल्कि यह दायित्व रचनाकार का है.

प्रकाशक/मुद्रक : **रचना यादव खन्ना** द्वारा अक्षर प्रकाशन प्रा.लि., 4229/1, अंसारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली-110002 के लिए प्रकाशित एवं चार दिशाएं, जी-39/40, सेक्टर-3, नोएडा- 201301 (उ.प्र.) से मुद्रित. संपादक–संजय सहाय.

मूल संस्थापक : **प्रेमचंद : 1930**
पुनर्संस्थापक : **राजेन्द्र यादव : 1986**

पूर्णांक-464 वर्ष : 39 अंक : 11 जून 2025

आवरण : पारुल तोमर

हंस

जनचेतना का प्रगतिशील कथा-मासिक

इस अंक में

मेरी तेरी उसकी बात
4. मूर्तियां बेचने की कला : राजेन्द्र यादव
('हंस', अक्तूबर 1995)

अपना मोर्चा
9. पत्र

न हन्यते
13. वैश्विक संवेदना का निर्देशक : विजय शर्मा
16. शा'इरी का सिकन्दर पीठ फेरकर चला गया : गीताश्री

मुड़-मुड़ के देख
18. गन्नेवाला : स्वदेश दीपक
('हंस', दिसंबर 2002)

कहानियां
24. चोट : पंकज बिष्ट
31. अवार्ड : प्रमोद द्विवेदी
37. आप तहज़ीब हाफ़ी को सुनते हैं? : प्रभात रंजन
46. रोशनी में बिखरा अंधेरा : ममता सिंह
51. उस शहर की याद में : संजय मनहरण सिंह

कविताएं
58. वर्तिका नन्दा, शंकरानंद, सपना भट्ट
59. ऋषभ तिवारी

ग़ज़ल
65. सुधीर केवलिया, पद्मनाभ गौतम
87. संजय ग्रोवर 96. रामबहादुर चौधरी 'चंदन'

यात्रा-वृत्त
60. पुरातत्व और आधुनिकता का बेजोड़ गठजोड़ : शैलेन्द्र सागर

लेख
66. दुखिया दास कबीर है... : विश्वनाथ त्रिपाठी

आधुनिक पाश्चात्य दर्शन और साहित्य
69. आधुनिक दर्शन की विकास यात्रा-5: अशोक कुमार

परख
75. उधेड़कर बुना जरूरी इतिहास : अनामिका
78. जीवन स्थितियों का यथार्थ : शुभम मोंगा
80. जेंडर भेद को भेदने की जद्दोजहद : शिव कुमार यादव
83. समय के संदर्भ और संबंधों के ध्वनि की दास्तान : महेश कटारे
85. रूपहले पर्दे से झांकते धूसर सच की पड़ताल : लक्ष्मी शर्मा

साहित्यनामा
88. कबिरा खड़ा बाजार में, लिए लुकाठी हाथ : साधना अग्रवाल

शब्दवेधी/शब्दभेदी
93. वेश्यावृत्ति खत्म हो...: तसलीमा नसरीन

रेतघड़ी
97-98

मूर्तियां बेचने की कला

राजेन्द्र यादव

बुद्धिजीवियों या आज सोचने-समझने वालों के सामने सबसे बड़ी उलझन यह है कि जिन प्रतीकों या साक्ष्यों से हमारी संस्कृति और इतिहास बने हैं उनके प्रति सलूक क्या हो? देश और काल के बीच 'एक समय का सत्य' मानकर हम उन्हें ज्यों का त्यों सुरक्षित-संरक्षित रखें या आज के आर्थिक, व्यावसायिक और राजनीतिक (बौद्धिक/शोधपरक नहीं) दबावों या रणनीतियों के तहत उन्हें निरंतर संशोधित, परिवर्द्धित, निर्मित या नष्ट करते रहें? जाहिर है कि सदियों की लंबी यात्राओं के दौरान सत्ताएं, इतिहास और संस्कृतियां बदली हैं और बहुत कुछ ऐसा छोड़ गई हैं, जिन्हें आज गले उतार पाना मुश्किल है. क्या हम हर बीते हुए को इतना तथ्य-निरपेक्ष (मिथक) बनाते रहें कि रोज बदलते हुए 'आज' में बैठकर गर्व, संतोष और शेखी से कहते रह सकें कि हम हमेशा महान थे, इसलिए आज भी महान हैं? महान होने की यह कुंठा हर उस प्रमाण को बदलने या नष्ट करने की प्रक्रिया को जन्म देगी जो शर्मनाक या अस्वीकार्य होता चला जाएगा. यानी अगर मैं आज पांच सितारा होटल शृंखला का मालिक हूं तो यह कभी स्वीकार नहीं करना चाहूंगा कि मेरे बाप-दादा सड़क के किनारे पेड़ के नीचे बैठे चाय-रोटी बनाते थे और हर ग्राहक के बर्तन खुद धोते थे. किसी अकेले, अंधेरे कमरे में, पिचके टूटे, जंग खाए टीन के संदूकचे में रखे फटे-गले कुर्ते को देखकर मैं रो तो सकता हूं; यह मेरे बाप-दादा की निशानी है, मगर सबके सामने तो मुझे यही कहना है कि नौकर-चाकरों से घिरे अपनी हवेली में वे हमेशा कीनख्वाब ही पहनते थे. हो सकता है एक दिन मैं उन प्रमाणों को ही नष्ट कर दूं जो आज मुझे 'छोटा' बनाते हैं. आज कौन-सा राजा-महाराजा यह स्वीकार करना चाहेगा कि उसके पुरखों ने ये जागीरें-जायदादें या रियासतें लुटेरों और डकैतों के रूप में हासिल की हैं या अपने ही भाइयों के खिलाफ विश्वासघात और गद्दारी के एवज में इनाम की तरह पाई है? फिल्मों में या एक-दो पीढ़ी तक जिंदगी में, वीडियो-जगत् के खरबपति गुलशन कुमार यह कह सकते हैं कि उन्होंने अपनी जिंदगी की शुरुआत साइकिल पर बिजली का सामान यहां से वहां पहुंचाने वाले नौकर के रूप में की थी. हो सकता है वे उस साइकिल को संभाले हुए भी हों—मगर चार पीढ़ी बाद? उनके पोते उस साइकिल को देखना भी नहीं चाहेंगे. या उसके होने से